IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 12, Iss 01, 2023

अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य की भूमिका

-डॉ॰ मुकेश कुमार शर्मा

राजकीय संस्कृत महाविद्याल्य फागली

'अभिनव संस्कृत काव्यशास्त्र' का निर्माण प्रतिभाशाली तथा बहुश्रुत आचार्यों के एक समवाय द्वारा कराया जाय और बाद में पुनः कुछ सर्वमान्य श्रेष्ठ सूरियों द्वारा परीक्षित करा कर उसे लोकार्पित किया जाय नये संस्कृत काव्यशास्त्र की संभावना के द्वार अभी भी खुले हैं। जिन काव्यतत्त्वों की स्फुट एवं पृथक् मीमांसा आचार्यों द्वारा अपने काव्यसिद्धान्तों के आलोक में, शताब्दियों के अन्तर से की गई है, उनका विवेचन एक ही सर्वमान्य काव्यात्मतत्त्व के आलोक में, युगपत् होना है। भंग, भंगी, भंगिमा, प्रौढि, वैदग्धी, शय्या, मुद्रा, वक्रोक्ति, रमणीयता, चमत्कार, पाक, विच्छत्ति, स्फोट, ध्वनि, अलोक-सामान्य, लोकोत्तरवर्णना, लोकातिक्रान्तगोचरता जैसी पदावलियों की सापेक्ष व्याख्या होनी है। अलंकार सम्बन्धी पूर्वाचार्यों के नामरूपात्मक विवादों की समीक्षा कर, उन्हें अन्तिम रूप देना है। रसध्वनि के रूप में ध्वनिसम्प्रदाय में भी मूर्धाभिषिक्त, रसवाद के विरुद्ध उठी आपत्तियों की समीक्षा कर, नये सिरे से उसकी प्रतिष्ठा करनी है। अर्वाचीन संस्कृत नवलेखन की उपन्यास, कहानी, एकाङ्की, यात्रावृत्त, दैनन्दिनी तथा गीतादि विधाओं तथा वैदेशिक प्रतिमानों पर प्रणीत संस्कृत की हाइकूँ, सीजो तथा सॉनेट, गजल प्रभृति काव्यकृतियों की गुणदोष समीक्षा कर उन्हें परिभाषित करना है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सम्भूत (पूर्व प्रतिष्ठित) काव्यशास्त्र से ही ये सम्भावनाएँ प्रकट होंगी क्योंकि संभवनीयता के बीज सम्भूति में ही सुरक्षित रहते हैं।

प्रणव की गंगोत्री से उद्‌भूत, उद्गीथ कल्लोलों के घात-प्रतिघात से मुखरित, पुराण गिरिगह्वरों में विश्रान्त, वाल्मीकि एवं व्यासरूपी नर-नारायण पर्वतों से पुनर्मुक्त, पद-पद पर तीर्थकविता की सर्जना करती संस्कृत गंगा, संस्कृति के उषोदय काल से आज तक अविच्छिन्न, अविराम एवं अनाहत गति से प्रवहमान रही है। उसकी गति को राजनयिक परिवर्तन प्रभावित नहीं कर सके। बल्कि उसने स्वयं राजनय को आत्मसात् कर लिया।

संस्कृत-वाङ्मय का इतिहास, ऐतिहासिक रूप से बृहत्तर भारत का और भावनात्मक रूप से समूचे विश्व का इतिहास है। एक ओर यदि संस्कृत के शिलालेख माइसोन (चम्पा), प्राम्बनान (यवद्वीप) तथा अंकोरवाट (कम्बुज) के मन्दिर-गोपुरों पर लिखे गये, तो दूसरी ओर वैदिक देवताओं का नामोल्लेख बोगाज़कोई (तुर्की) के हित्ती-मितानी सन्धि-पत्र पर हुआ। इस प्रकार, आधा विश्व प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत भाषा के वर्चस्व से अनुप्राणित रहा।

वैदिक युग से लेकर भगवान् तथागत के उदय तक संस्कृत का प्रभुत्व अभिव्यक्ति के क्षेत्र में एकच्छत्र ही रहा। जनभाषा के पक्षधर तथागत एवं वर्धमान ने, सम्भवतः संस्कृत को वैदिक धर्म एवं संस्कृति का शंखनाद मानकर ही उपेक्षित किया। पाली तथा अर्धमागधी को उन दोनों ने साम्प्रदायिक भाषा के रूप में अपनाया; परन्तु संस्कृत की लोकप्रियता एवं भाषिक गरिमा ने बहुत शीघ्र ही, उन्हें उनके प्रमाद का बोध करा दिया। शिशुनाग एवं मौर्यवंश का शासन समाप्त होते ही, शुंगवंशी नरपतियों का सक्रिय सहयोग पाकर संस्कृत शतगुण वेग एवं ऊर्जा के साथ जनमानस पर छा गयी। कविकुलगुरु कालिदास ने उसे वाणी का माधुर्य, भावों की समञ्जसता तथा रचना की गति दी, तो माघ एवं श्रीहर्ष ने उसे शास्त्रीय पाण्डित्य का उपायन प्रदान किया। सातवाहन हाल एवं गोवर्धनाचार्य ने उसे लोकसंवेदनाओं की मिठास दी, तो

जयदेव एवं पण्डितराज ने उसे गन्धर्वशास्त्रीय संगीत-म्रदिमा दी। दार्शनिकों, शिल्पवेदियों एवं शास्त्रकारों का आश्रय पाकर देववाणी 'सहस्त्रधारा' बन गयी।

वेद, पुराण एवं आर्ष काव्यों की भाषा के रूप में संस्कृत चरणामृत रही, शास्त्रभाषा के रूप में वह पथ्यौषधि बनी और काव्याभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में सन्तर्पक शीतल, सुवासित जल। संस्कृत-कविता की वह सन्तर्पण-क्षमता आज भी अक्षुण्ण है, जबकि अनेक कुण्ठित मनोवृत्ति वाले संस्कृतज्ञ भी पण्डितराज जगन्नाथ के साथ संस्कृत कविता का अवसान मान लेते हैं; परन्तु ऐसा नहीं है।पण्डितराज का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व इतना उदात्त, वर्चस्वी तथा समर्थ था कि तत्तुल्य प्रतिभा के अभाववश परवर्ती युग का कोई और आचार्य अथवा कवि उनके अभाव की पूर्ति नहीं कर पाता। यही कारण है कि पूर्वाग्रही संस्कृतज्ञों को एक 'रिक्तता' अथवा स्थापित 'अपक्षय' का प्रतिभास अनुभव होता है।

वस्तुतः देववाणी संस्कृत चिरकाल से ही तपश्चर्या, साधना एवं निष्ठा की भाषा रही है। यही कारण है कि संस्कृत में स्वान्तः सुखाय ही अधिक लिखा गया। तात्कालिक फलश्रुति, मान-यश अथवा अर्थलाभ के लिए, राजसंरक्षण प्राप्त साहित्यकारों ने भले ही लिखा हो, एकान्तसेवी निरपेक्ष साधक साहित्यकारों ने नहीं लिखा। स्वान्तः सुखाय लिखी गयी कृतियों की सम्प्रेषणीयता विलक्षण ही होती है। वह गुण, चरकसंहिता से लेकर कालिदास की कृतियों तक, सर्वत्र मूर्तिमान् है।

संस्कृतरचनाधर्मिता की इसी तापसी प्रकृति के कारण उसका अजस्त्र प्रवाह, इतिहास के किसी भी कालखण्ड में बाधित नहीं रहा। तुर्कों के आक्रमण होते रहे, जनता लुटती-पिटती और चीखती रही, अन्ततः भारत में इस्लामी राजसत्ता का वर्चस्व स्थापित भी हो गया; परन्तु इन विपदाओं में भी, क्रन्दना के स्वरों से ओतप्रोत साहित्य लिखा जाता रहा-पृथ्वीराजविजय, हम्मीरकाव्य, सुर्जनचरित आदि के रूप में।

यही स्थिति पण्डितराज के बाद भी हुई। पण्डितराज शहंशाह शाहजहाँ के राजकवि थे। उन्हें सेनापति आसफ खान, असम-नरेश प्राणनारायण, राणा जगतसिंह तथा शहजादे दाराशिकोह का भी आदरभाव प्राप्त था। शाहजहाँ के अनन्तर आलमगीर औरंगजेब का लम्बा शासनकाल आता है, जो कि सन् १७०७ई० में समाप्त हुआ। सन् १७८४ ई० में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (कलकत्ता) की स्थापना हुई।

इन तिथियों के सन्दर्भ में यदि विचार किया जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनके शासनकाल (१७८४ ई०) के अनन्तर ही संस्कृत निराश्रित हुई होगी और उसकी यह स्थिति पुनर्जागरणकाल अर्थात् सन् १७८४ ई० तक वैसी ही बनी रही होगी। भारतीय इतिहास में यह कालखण्ड (१७०७ से १७८४ तक) मुगल सल्तनत के खण्डहरों पर ब्रिटिश राजसत्ता के राजप्रासादों की संस्थापना का है। राजसत्ता के अहर्निश रक्तपात में समूची भारतभूमि ही विपर्यस्त हो उठी थी। फिर साहित्य का योगक्षेम कैसे अक्षुण्ण रहता?

परन्तु आश्चर्य तो यह है कि नित्यप्रति के तुमुल संग्रामों में उलझी इस १८वीं शती में भी विपुल संस्कृत वाङ्मय लिखा गया। विश्वेश्वर पण्डित, रामदेव, घनश्याम, जगदीश्वर, पेरुसूरि, शंकर दीक्षित, भूदेव शुक्ल, देवकवि तथा ट्रावनकोर के युवराज राजवर्मा (१७५७-१७८९ र्स०) ने अपनी दृश्य एवं श्रव्य कृतियों से देववाणी को समृद्ध किया। इतना ही नहीं, सैकड़ों टीकाकारों एवं स्वतन्त्र आचार्यों ने काव्यशास्त्रीय चिन्तन को भी, इसी अवधि में पल्लवित किया।

शाह आलम से बंगाल और बिहार की दीवानी प्राप्त कर लेने के अनन्तर ही ब्रिटिश शासनसत्ता भारत में प्रायः स्थिर हो गयी थी। लार्ड डलहौजी की 'अपहरणनीति' ने समूचे भारत को तीव्रता से निगलना प्रारम्भ कर दिया। नवाब सिराजुद्दौला, अपने ही सहायकों के षड्यन्त्र में फँसकर विनष्ट हो चुका था। फिरंगियों

IJFANS
International Journal of
Food And Nutritional Sciences

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**, UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 12, Iss 01, 2023

के विरुद्ध उठा १८५७ ई० के विप्लव का लावा भी ठण्डा पड़ चुका था। इस प्रकार, १९वीं शती के मध्यकाल तक भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अविच्छिन्न अंग बन गया।

१८५७ ई० के विप्लव के साथ ही साथ भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व भी समाप्त हो गया। लार्ड के स्थान पर अब महारानी विक्टोरिया के वायसराय (प्रतिनिधि) शासन करने लगे। सुख, शान्ति एवं स्थिरता का वातावरण स्थापित हुआ। इस राजनयिक स्थिरता ने भारत के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को भी प्रभावित किया। गुणग्राही ब्रिटेनवासियों की दृष्टि प्राच्यविद्या (Indology) के विलक्षण पक्षों पर पड़ चुकी थी। वे भारतीय पण्डित-समाज की साधना, निष्ठा एवं अगाध शास्त्रज्ञान से आतंकित भी थे; परन्तु अभी संस्कृत में उनका प्रवेश नहीं हो पाया था।

संस्कृत-भाषा के पठन-पाठन में आंग्ल मनीषियों की सहभागिता को ही मैं आधुनिक संस्कृत-साहित्य का 'पुनर्जागरणकाल' मानता हूँ। इस पुनर्जागरण का प्रारम्भ हुआ कलकत्ता में 'एशियाटिक सोसाइटी' की संस्थापना के साथ। कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश सर विलियम जोन्स ने सर्वप्रथम संस्कृत पण्डितों के सान्निध्य में रहकर संस्कृत सीखी। दक्षता प्राप्त कर लेने के बाद ही उन्होंने कविकुलगुरु कालिदास की कालजयी नाट्यकृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' को अंग्रेजी में अनूदित किया। १७९१ ई० में जॉन फास्टर ने इसी अंग्रेजी रूपान्तर का जर्मनभाषान्तर प्रस्तुत किया। शाकुन्तलम् का यही जर्मनी रूपान्तर समूचे यूरोप में संस्कृत की महिमा-गरिमा का शंखनाद बनकर गूँज उठा। उस युग का अप्रतिम समीक्षक एवं सहृदय जर्मन कवि गेटे शाकुन्तल के शिल्प एवं इतिवृत्त से अभिभूत हो उठा और उसने इस मानवी निर्मिति को स्वर्ग एवं पृथ्वी की संगमस्थली घोषित कर दिया। गेटे की इस समीक्षा ने ही यूरोप को संस्कृताध्ययन की ओर उन्मुख किया।

एक ही दो दशकों में समूचा पाश्चात्य जगत् संस्कृत की ओर उन्मुख हो उठा। संस्कृत के विपुल साहित्य, भाषाई संरचना एवं उसकी प्राचीनता ने पाश्चात्य विद्वानों को अध्ययन की नयी दिशाएँ दीं। लोगों को प्रतीत होने लगा, मानो संस्कृत ही विश्वभाषाओं की एकसूत्रता को सिद्ध करनेवाली कुञ्जी है। इस उद्देश्य से ही १९वीं शती ई० के दूसरे दशक में पेरिस में भाषाशास्त्रीय परिषद (Linguistic Association) की स्थाना हुई। रॉथ, विल्सन, ग्रिम, ग्रासमान, वर्नर, मैक्समूलर, जैकोबी, गिल्डेनर, गोल्डस्टकर, कोथ, मैक्डानल, वूल्नर, ह्विटनी, आफ्रेक्ट, पीटर्सन, टॉमस, कावेल, जिमरमैन, ग्रिफिथ, बैलेण्टाइन, कोलब्रुक, स्टेनकोनो, एच० कार्न, सिल्वों लेवी, वेबर, विण्डिश, पिशेल, ल्यूडर्स, ब्लूमफील्ड, फ्लीट, हार्नली, कपलर, टकर, टर्नर, जेस्पर्सन, वान्द्रियाज, श्लेगल, हम्बोल्ट, बेनफी, कीलहार्न, गावें, किरफेल तथा पॉल हॉकर सरीखे शत-शत विद्याव्यसनी संस्कृत-वाङ्मय के विविध पक्षों के परिशीलन में निष्ठापूर्वक दत्तचित्त हो गये। वेद, वेदाङ्ग, षड्दर्शन, सौगत एवं जैन-दर्शन, पुराण, काव्य, नाटक तथा शास्त्रमीमांसा का नया दौर भारत एवं भारतेतर राष्ट्रों में प्रारम्भ हुआ।

यही संस्कृत वाङ्मय के परिशीलन का पुनर्जागरण था। सरविलियम जोन्स द्वारा 'शाकुन्तलम्' का १७८४ ई० में अँग्रेजी में रूपान्तर किया जाना तथा एशियाटिक सोसाइटी का कलकत्ता में स्थापित होना, ये दो घटनाएँ ही संस्कृत साहित्य के इतिहास में 'आधुनिक काल' की सर्जना करती हैं-यह मेरी दृढ़ अवधारणा है।

१७८४ ई० से प्रवर्तित अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य, अद्यावधि उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त कर रहा है। दो सौ वर्षों से भी अधिक इस कालखण्ड को मैं पुनः तीन उप कालखण्डों में विभक्त करना चाहूँगा-

(१) पुनर्जागरण-काल (१७८४-१८८४ ई०),

(२) स्थापना-काल (१८८४-१९४७ ई०),

(३) समृद्धि-काल (१९४७ से अब तक)।

समूची १९वीं शती पुनर्जागरण-काल के अन्तर्गत आती है। इस कालखण्ड की दो विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि संस्कृत भाषा एवं वाङ्मय का प्रचार-प्रसार समूचे संसार में हुआ। संस्कृत की अवरुद्ध रचनाधर्मिता पुनः गतिशील हुई। संस्कृत की ओर न केवल विद्वज्जनों का, अपितु शासन का भी ध्यान आकृष्ट हुआ। संस्कृत के प्रति आदरभाव होने के कारण, भारत के प्रति भी विश्व के बुद्धिजीवियों एवं राजनेताओं का आदरभाव जागृत हुआ। भारतीय दर्शन, अध्यात्मचिन्तन एवं भारतीय जीवन-पद्धति की प्रतिष्ठा यूरोप में शनैः शनैः बढ़ने लगी।

पुनर्जागरण-काल की दूसरी विशेषता है-पाश्चात्त्य एवं पौरस्त्य वैदुषी का सामञ्जस्य। ज्ञानामृत-पिपासु पाश्चात्त्यों ने जब भारतीय पण्डितों का अन्तेवासित्व अथवा सख्य स्वीकार कर, शास्त्रों का अध्ययन प्ररम्भ किया, तो पारस्परिक विचार-विनिमय अथवा समवेत-चिन्तन की एक विलक्षण परम्परा स्वतः स्फूर्त हो उठी। इस परम्परा ने ही दोनों संस्कृतियों को सह-अस्तित्व, समभाव तथा समञ्जसता की शिक्षा दी। इसके परिणामस्वरूप ही भारत में एक 'आंग्ल-भारतीय सञ्चेतना' (Anglo-Indian Consciousness) जनमी, जिसने अनेक क्षेत्रों में भारत की प्रभूत हितसिद्धि की।

पुनर्जागरण-काल के संस्कृत कवि एवं लेखक प्रायः परम्परापोषक एवं यथास्थितिवादी हैं। उनमें कथ्य अथवा शैली के परिणाम अथवा विवर्त का अभाव-सा दीखता है। वे मूलतः उपक्रमवादी हैं। आलमगीर के साहित्य-संगीत-कलाविरोधी राजनय से स्थगित, कुण्ठित एवं जड़ीभूत संस्कृत कविता को इन साहित्यकारों ने एक बार पुनः जनमानस में प्रतिष्ठित किया-यही उनका सर्वश्रेष्ठ योगदान था।

पं० अम्बिकादत्त व्यास, लक्ष्मणसूरि, विधुशेखर भट्टाचार्य, पद्मनाभ, पञ्चानन, शिवेन्द्र, रामचन्द्र, केरलवर्मा, परमेश्वर शिवद्विज, अभिनवरामानुजाचार्य तथा बल्लिशायकवि आदि पुनर्जागरणकाल के प्रमुख कवि हैं। नदियानरेश वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य का चैत्रयज्ञ, अम्बिकादत्त व्यास का सामवतम्, मूलशंकर माणिक्य-लाल याज्ञिक के छत्रपतिसाम्राज्यम्, प्रतापविजयम्, संयोगितास्वयंवरम् तथा म०म० हरिदास सिद्धान्तवागीश की नाट्यकृतियाँ (मेवारप्रताप, बंगीयप्रताप, विराजसरोजिनी, कंसवध, जानकीविक्रम तथा शिवाजीचरित) इसी समय लिखी गईं।

पाश्चात्त्य एवं पौरस्त्य साहित्य के सामञ्जस्य की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। शेक्सपीयर की प्रख्यात नाट्यकृति 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' का अनुवाद आर० कृष्णमाचारी ने 'वासन्तिकस्वप्न' के नाम से (१८९२ ई०) तथा 'कामेडी ऑफ एरर्स' का अनुवाद श्रीशैल दीक्षितार ने 'भ्रान्तिविलास' के नाम से (१८७७ ई०) किया। इसी प्रकार ट्रावनकोर के नाट्यकार राजराजवर्मा ने भी इसी समय शेक्सपीयर-प्रणीत 'ओथेलो' नाटक का रूपान्तर किया।

१८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना के साथ ही साथ, भारत में राष्ट्रीयता की भावना विकसित होने लगी। अंग्रेजी शासन भारत की प्रकृति के अनुकूल नहीं था। साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद के स्थान पर लोकतन्त्र

अथवा साम्यवाद के प्रति लोगों में रुचि बढ़ने लगी थी। फ्रांस और रूस की क्रान्तियों ने उपनिवेशवादी शक्तियों को झिंझोड़ कर रख दिया था। ये राजनयिक गतिविधियाँ साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होने लगीं।

कांग्रेस की संस्थापना से लेकर भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति तक का कालखण्ड मैं आधुनिक संस्कृत-साहित्य का 'स्थापना-काल' मानता हूँ। इस शीर्षक की सार्थकता यही है कि इसी अवधि में वाङ्मय के विविध क्षेत्रों में नयी-नयी स्थापनाएँ हुईं। अभी तक जो महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथा, आख्यायिका, चम्पू एवं नाटक-प्रकरणादि साहित्यदर्पण के पारिभाषिक दायरे में लिखे जाते रहे, उनमें मौलिक परिवर्तन हुए। जबकि इस परिवर्तन की कोई निश्चित तिथि नहीं है, तथापि अधिकांश नवीन स्थापनाएँ बीसवीं शती ई० के प्रारम्भिक चरण में ही हुई। इसीलिए इस कालखण्ड को 'स्थापनाकाल' कहना ही तर्कसंगत होगा।

ये स्थापनाएँ क्या थीं? इनका औचित्य क्या था? ये प्रश्न भी कम महत्त्व के नहीं हैं। इसका उत्तर यही है कि साहित्य समाज की अभिरुचि एवं प्रकृति का अनुवर्तन करता है। यदि ऐसा न होता तो ध्वनिप्रतिष्ठापनाचार्य होते हुए भी आचार्य आनन्दवर्धन 'देवीशतक' सरीखी चित्रकविता लिखने को बाध्य न होते। राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ दिशा प्रदान करती हैं

१९वीं शती के अन्तिम चरण तक, भारत में अंग्रेजी-साहित्य का अध्ययन पूरी सुव्यवस्था के साथ होने लगा था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस युग के आंग्लभाषा-मर्मज्ञ संस्कृत कवियों को रचना की नयी दृष्टियाँ मिली। श्रेष्ठ समीक्षक प्रो० कीथ ने गीतगोविन्द में, पाश्चात्य कविता का रमणीयतम तत्त्व 'लीरिक' (Lyric) अनुभव किया तथा उसी मानदण्ड के आधार पर गीतगोविन्द को 'लीरिकल पोयट्री' घोषित कर दिया। वही 'लोरिकल पोयट्री' गीतकाव्य के रूप में रूपान्तरित होकर संस्कृत की एक नवीन काव्यविधा बन गयी। अन्यथा कौन नहीं जानता कि सर्गबद्ध होने के कारण 'गीतगोविन्द' मात्र महाकाव्य है। महाकाव्य से इतर काव्यविधा खण्डकाव्य ही है-यह भी एक स्थापित सत्य है।

पाश्चात्त्य समीक्षकों द्वारा समालोचित होने के ही कारण पाश्चात्त्य काव्यशास्त्र की अनेक स्थापनाएँ, मान्यताएँ, संस्कृत रचना-धर्मिता के क्षेत्र में भी अनुकरणीय बन गयीं। सम्भवतः इसी उपक्रम ने प्रतिभाशाली संस्कृत कवियों को भी परम्परा और रूढ़ि का मोह छोड़ जनरूचि के अनुकूल लिखने के लिए प्रेरित किया। महाकाव्य की सर्जना में, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सन्ध्या, ग्राम-ग्रामटिका आदि के वर्णन की सार्थकता तो अभी भी यथावत् स्थित थी; परन्तु षड्ऋतु वर्णन, अप्सरस् सम्भोग-विप्रलम्भ-वर्णन आदि निरर्थक सिद्ध हो उठे थे। स्वतन्त्रता की मस्ती में झूमते भारतीयों को क्रान्ति के स्वर भाने लगे थे। उन्हें धीरललित और धीरप्रशान्त चरित से क्या लेना-देना? अब तो उन्हें धीरोदात्त तथा धीरोद्धत (स्वातन्त्र्य-पक्षघर) चरित ही प्रिय था।

इस प्रकार महाकाव्य, खण्डकाव्य की पुरानी परिभाषाएँ अब अप्रासंगिक-सी लगने लगी थीं। रचना के क्षेत्र में नवीन स्थापनाएँ अब 'दुर्निवार' बन गयी थीं। इतना ही नहीं, कुछ और भी बातें उद्वेजक लगने लगी थीं। राजे-महाराजे विद्याव्यसनी नहीं रह गये थे। गौराङ्ग महाप्रभुओं का यथाकथञ्चित् प्रसादन ही उनका एकमात्र लक्ष्य रह गया था। फलतः उन्हें सुरा-सुन्दरी से फुर्सत नहीं थी। ऐसी स्थिति में भला संस्कृत के कवियों को आश्रय कौन देता? विक्रम, अवन्तिवर्मा, भोज, यशोवर्मा तथा लक्ष्मणसेन के 'कवि-नवरत्नों' की कथा अब पुरानी पड़ चुकी थी। समस्यापूर्ति, अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, प्रहेलिका तथा गूढ़चतुर्थपाद आदि उत्कृष्ट साहित्यिक मनोरञ्जन अब समाप्तप्राय थे अथवा व्यक्तिनिष्ठ बन गये थे।

 © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

संस्कृत का वर्चस्व ह्रासोन्मुख हो चला था। हिन्दी भाषा का काव्य दिनोंदिन लोकप्रिय हो रहा था, भारतीय स्वाधीनता संग्राम के स्वर को मुखरित करने के कारण। ऐसी स्थिति में संस्कृत के स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, सुवदना, वंशपत्रपतित एवं नर्दटक जैसे लम्बे एवं समासबहुल छन्द भी सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से अनुपयुक्त एवं क्लिष्ट हो चले थे। आवश्यकता थी गीतगोविन्द जैसी रसमय तथा नीतिशतक जैसी सरल पदशय्या की।

स्थापनाकाल में छन्द-सम्बन्धी इस उद्वेग को भी दूर करने का प्रयास प्रारम्भहुआ। इसके साथ ही साथ, स्थापना के तृतीय चरण के रूप में, अन्य भाषाओं की अनेक साहित्यविधाओं को संस्कृत में भी प्रतिष्ठापित किया गया, जैसे एकाङ्की, यात्रावृत्त, रिपोर्ट एवं उपन्यास आदि। एकाङ्की संस्कृत में पहले भी थे; परन्तु किसी न किसी रूपक अथवा उपरूपक के ढाँचे में कसे हुए। उपन्यास पहले भी थे; परन्तु कथा अथवा आख्यायिका के प्रतिमान रूप में। नयी स्थापनाओं की विशेषता यह थी कि वे अन्य भाषाओं की लोकप्रिय साहित्यविधाओं के अनुरूप थीं, साथ ही साथ पूर्वाग्रहों से सर्वथा मुक्त भी थीं।

नयी स्थापनाओं का शुभारम्भ पुनर्जागरण-काल (१७८४-१८८४ ई०) में ही हो चुका था। पं० अम्बिकादत्त व्यास 'शिवराज-विजय' आख्यायिका में 'सखि हे नन्दतनय आगच्छति' गीत का प्रणयन कर सम्भवतः समसामयिक रचनाकारों को चौंका चुके थे। इसी प्रकार भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (जयपुर) भी हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि की परम्परा से हटकर, पाश्चात्त्य प्रतिमानों पर आधारित संस्कृत कहानियाँ लिखने में लगे थे। अनेक कवियों ने 'एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा' अथवा 'तत्रैको नायकः सुरः' का शास्त्रीय बन्धन नकार कर सर्वथा नवीन विषयों एवं चरितों पर महाकाव्य लिख डाले, जिनमें शिवकुमारशास्त्री-प्रणीत (१९१० ई०) यतीन्द्रजीवनचरित, भगवदाचार्यकृत (१९४० ई०) भारतपारिजात (१९४५ ई०) पारिजातापहार, म०म० रामावतार शर्मा-प्रणीत भारतानुवर्णन, दिलीपदत्त उपाध्याय, अखिलानन्द शर्मा एवं मेधाव्रत-प्रणीत मुनिचरितामृत, दयानन्ददिग्विजय, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री-प्रणीत जयपुरवैभव, गंगाप्रसादोपाध्याय-कृत आर्योदय आदि विशेष महत्त्व के हैं। यतीन्द्रचरित में स्वामी भास्करानन्द का गुणानुवाद है, तो भगवदाचार्य के महाकाव्यों में क्रमशः गान्धिचरित एवं 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का प्रत्यग्र वर्णन है। अन्यान्य महाकाव्य-कथानक भी सर्वथा नवीन हैं।

स्वातन्त्र्यपूर्व स्थापना-काल के कवियों को स्वयुगीन परम्परा पोषक

पण्डितों, कवियों, आचार्यों तथा पाठकों का तिरस्कार भी सहना पड़ा। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के नवगीतों की यदि उपेक्षा नहीं हुई, तो नूतन प्रस्थान की प्रतिष्ठा के अनुकूल अभिनन्दन भी नहीं हुआ। सम्भवतः इसी का परिणाम था कि आचार्य की कारयित्री प्रतिभा का आशीः संस्कृत को कम, राष्ट्रभाषा हिन्दी को अधिक मिला; परन्तु इन वाणीपुत्रों ने, युग की अभिरुचि का समादर करते हुए जिन नवीन साहित्यिक मूल्यों एवं प्रतिमानों की स्थापना की, उसी से वर्तमान संस्कृत-वाङ्मय समृद्ध, लोकप्रिय एवं जीवन्त बन पा रहा है।

दासता की बेड़ियों में बँधा भारत राष्ट्र स्वतन्त्र होने के लिए छटपटा रहा था। दक्षिण में सुब्रह्मण्य भारती, पूर्व में बंकिमचन्द्र, पश्चिम में डॉ० इकबाल एवं उत्तर में श्यामलाल पार्षद, बालकृष्णशर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, दिनकर एवं दद्दा मैथिलीशरण गुप्त आदि, कविता के स्वरों में क्रान्ति का बिगुल बजा रहे थे। इस आग्नेय वातावरण ने स्थापना-काल के संस्कृत कवियों को भी आकृष्ट

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**, UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 12, Iss 01, 2023

किया। फलतः शान्ति, सौमनस्य एवं अध्यात्मज्ञान की माध्यमभूता संस्कृतकविता का भी रुख बदला। पं० जानकीवल्लभ शास्त्री के गीतों की चर्चा की गई है। यह परम्परा उत्तरभारत में, पं० प्रभातशास्त्री के गीतों से विकसित हुई। पण्डिता क्षमाराव ने 'सत्याग्रहगीता' के प्रणयन से उसी राष्ट्रीय काव्यधारा का पल्लवन किया। स्थापनाकाल के अन्तिम चरण तक संस्कृत कविता, अन्यान्य भारतीय भाषाओं में प्रणीत समस्त वाङ्मय-विधाओं को आत्मसात् कर चुकी थी। संस्कृत-कवि के पास आर्ष काव्यपरम्परा का रिक्थ तो था ही, वर्तमान की समृद्धि भी उसके हाथों में थी।

१५ अगस्त, १९४७ ई० के दिन भारत स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित हुआ। इसी क्षण को मैं अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य की समृद्धि का प्रारम्भबिन्दु मानता हूँ। समृद्धिकाल के बीते हुए प्रायः चार दशकों में संस्कृत साहित्य न केवल परितः समृद्ध हुआ है विविध विधाओं की रचनाओं से; बल्कि उसने साहित्य-गरिमा की पराकाष्ठा का संस्पर्श भी किया है। पूर्वस्थापित मान्यताओं का भरपूर पल्लवन समृद्धिकाल में हुआ दीखता है। लोकप्रिय जननायकों पर महाकाव्य-सर्जनाएँ इस अवधि में अधिक हुईं। नेहरू, सुभाष, तिलक, विवेकानन्द तथा श्रद्धानन्द पर महाकाव्य लिखे गये। विदेशी जननायकों पर भी मुक्त एवं प्रबन्ध काव्यों की सर्जना हुई। टाल्सटॉय, मार्टिनलूथर किंग, लेनिन तथा नेल्सन मण्डेला के चरित संस्कृत कविता में अवतरित हुए।

नारीचरित्र-प्रधान महाकाव्यों की परम्परा भी समृद्धिकाल की एक उपलब्धि ही मानी जायेगी। जानकी, सावित्री, यशोधरा, अहल्याबाई, झाँसीश्वरी (महारानी लक्ष्मीबाई) तथा इन्दिरा गाँधी पर प्रणीत महाकाव्य इसी कोटि के हैं।

खण्डकाव्य के विविध रूपों का पल्लवन पिछले कुछ दशकों में हुआ। दूतकाव्य की विधा में हनुमदूत (डॉ० हरिनारायण दीक्षित), मृगाङ्कदूत (अभिराज डॉ० राजेन्द्रमिश्र), तरङ्गदूत (डॉ० कृपाराम त्रिपाठी), दूतप्रतिवचन (डॉ० इच्छाराम द्विवेदी) तथा घरित्रीदर्शनम् (डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी) का प्रणयन हुआ। इसी प्रकार शतककाव्य की स्तोत्र, अन्योक्ति एवं राष्ट्रीय भावना से जुड़ी अनेक उत्कृष्ट कृतियाँ भी इसी कालखण्ड में प्रकाश में आईं। प्रस्तुत सन्दर्भ में सबका नाम्ना निर्देश कर पाना कठिन है, तथापि राष्ट्रयशोगायक डॉ० रमाकान्त शुक्ल की काव्यकृतियों-भाति मे भारतम्, जय भारतभूमे का उल्लेख करना समीचीन होगा। आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ० राजेन्द्र मिश्र एवं डॉ० विन्ध्येश्वरीप्रसाद की अन्यापदेशकृतियाँ पाठकों के आकर्षण का विषय रहीं।

वस्तुतः समृद्धिकाल का प्रमुख वैशिष्ट्य है-मुक्त गीतों की सर्जना। प्रो० श्रीनिवास रथ, अभिराज डॉ० राजेन्द्रमिश्र, डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ० भास्कराचार्य त्रिपाठी, डॉ० पुष्पा दीक्षित, डॉ० नलिनी शुक्ला, पं० सम्पूर्णदत्त मिश्र, ओगेटि परीक्षित शर्मा, डॉ० हरीराम आचार्य, डॉ० वीरभद्र मिश्र तथा डॉ० जगन्नाथ पाठक के विविधसंवेदनापरक उत्कृष्ट गीतों से संस्कृत का गीतवाङ्मय समृद्ध हुआ। स्कन्धहारीय (कहरवा), चैत्रक (चैता), कजरी, नक्तक (नकटा) प्रचार (पचरा), सूतगृहगीत (सोहर), रसिक (रसिया), लाङ्गलिक (लाँगुरिया), फाल्गुनिक (फाग) एवं गलज्जलिका (गजल) सरीखे लोकगीतों एवं उर्दू गीतविधा की अवतारणा बड़ी सहजता, सरलता एवं आकर्षण के साथ इस युग के कवियों ने अपने गीतों में की।

पाश्चात्त्य प्रतिमानों पर आधारित जनसंवेदना से जुड़ी संस्कृत-कथा की सर्जना का शुभारम्भ स्थापनाकाल में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री कर चुके थे। समृद्धिकाल ने उस परम्परा को आगे बढ़ाया। वर्तमान दशक में मर्मस्पर्शी तथा लोकसंवेदना से ओतप्रोत उन्हीं कथाओं की प्राञ्जलता एक बार पुनः अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र की कहानियों में उभरी। 'इक्षुगन्धा' में सङ्कलित डॉ० मिश्र की आठ कहानियाँ, राष्ट्रीय स्तर पर,

IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**, UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 12, Iss 01, 2023

समकालीन भारतीय साहित्य में चर्चित हुईं। इसी प्रकार 'दूर्वा (म०प्र० संस्कृत अकादमी, भोपाल) में प्रकाशित डॉ० मिश्र की अन्य कथाओं (सिंहसारिः, राङ्गडा, महानगरी, एकचक्रः, पोतविहगौ, चञ्चा) ने भी संस्कृतज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया है। नलिनी शुक्ल, प्रभुनाथ द्विवेदी, प्रशस्यमित्र, प्रमोदभारतीय तथा अशोक पुरनाट्टुकर की कहानियों (कथासप्तकम्) से वर्तमान संस्कृत-कथासाहित्य समृद्ध हुआ।

डॉ० हसूरकर के उपन्यासों ने एक बहुत बड़ी कमी पूरी की। चेन्नम्मा, अजातशत्रु तथा सिन्धुकन्या जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों ने वर्तमान संस्कृत गद्यवाङ्मय को वहीं गरिमा दी है, जैसी बाबू वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को दी थी। डॉ० केशवचन्द्र दास के उपन्यासों की विविधता भी एक विशिष्ट औपन्यासिक उपलब्धि है।

नाट्य के क्षेत्र में समृद्धिकाल की उपलब्धि है एकाङ्कियों की सर्जना ! यद्यपि प्रबुद्धभारतम् (डॉ० वी० आर० शास्त्री), सुसंहतभारतम् (पुल्लेल रामचन्द्रुडु), शिखाबन्धनम् (डॉ० रामाशीष पाण्डेय), पण्डितराजीयम् (डॉ० रमाकान्त शुक्ल), प्रमद्वरा (डॉ० राजेन्द्र मिश्र), आम्रपाली (डॉ० मिथलेश कुमारी मिश्रा) तथा यूथिका (डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी) जैसी सम्पूर्ण नाटक/नाटिका कृतियाँ भी इस कालखण्ड में प्रणीत हुईं, परन्तु वर्चस्व एकाङ्कियों का ही रहा। अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र के लगभग ७० एकाङ्की पिछले चार दशकों में लिखे गये। ये एकाङ्की समाज, संस्कृति, इतिहास तथा मिथकों से जुड़े हैं, यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि इनका शिल्पवैविध्य। रचनाकार स्वयं भी मञ्चों से जुड़ा रहा है, फलतः उसने मञ्चीय व्यावहारिक असुविधाओं को दृष्टि में रखते हुए इन एकाङ्कियों को लिखा है। इन नाट्यों की अवतारणा कभी तो पारम्परिक ढंग (सूत्रधार, नटी, मारिष) से होती है, तो कभी जादूगर तथा जमूरे के माध्यम सें। कभी रेडियो-प्रसारण ही हमें मूल कथानक तक पहुँचा देते हैं। कभी एकांकी शिविर में प्रस्तुत होता है तो कभी नाट्यप्रतियोगिता में प्रस्तुत होते हैं प्रविष्टि के रूप में, तो कभी स्वप्न की अनुभूति बनकर'। शिल्प-सौन्दर्य के ही कारण डॉ० मिश्र के एकाङ्की आन्ध्र तथा उत्कल जैसे दूरस्थ अञ्चलों में भी मञ्च पर प्रतिष्ठित हो सके हैं।

एस० वी० बालकृष्ण शास्त्री के सात एकाङ्कियों का संग्रह 'रूपकपुष्पमाला' (तिरुचिरापल्ली), पं० पूजालाल-प्रणीत २३ एकाङ्की (बालनाटकानि, पाण्डिचेरी), परीक्षित शर्मा प्रणीत परीक्षिन्नाटकचक्रम् जग्गू बकुलभूषण, नारायणशास्त्री कांकर तथा अन्यान्य रचनाकारों की स्फुट एकाङ्की कृतियाँ इस परम्परा को सांगोपांग बनाती हैं।

स्थालीपुलाकन्यायेन यह रहा समृद्धिकाल की संस्कृत रचनाधर्मिता का मूल्याङ्कन। उपर्युक्त विवरण किसी व्यक्ति को संस्कृत की जीवन्तता तथा प्रासंगिकता के प्रति आस्थालु बनाने में समर्थ है।

जिस भाषा के अमृतोपम वाङ्मय ने सम्पूर्ण विश्व को चेतना प्रदान की जिसमें विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय (वेद) लिखा गया, जो शाश्वत एवं चिरन्तन मानवमूल्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही, जिसके अध्ययन में ह्विटनी, सिल्वाँलेवी, कीथ, मैक्डानेल सरीखे पाश्चात्य मनीषियों ने भी जीवन की सार्थकता समझी, जिसे भरपूर न पढ़ पाने के लिए पं नेहरू जीवन भर पश्चात्ताप करते रहे-आज वही देववाणी संस्कृत, अपनी इस चौमुखी समृद्धि के बावजूद भारत में उपेक्षित है, विवादग्रस्त है, यह कितना बड़ा नियति का उपहास है। 'त्रिभाषा फार्मूला' में संस्कृत का नामोल्लेख तक नहीं। संस्कृत को निर्बाध गति से पढ़ने की स्कूल-कॉलेजों में कोई व्यवस्था नहीं। उसे अपमानजनक विकल्पों के साथ बाँध दिया गया है। यह राष्ट्र के संशयापन्न भविष्य का पूर्वाभास है। संस्कृत नहीं रहेगी, तो वाङ्मयी गरिमा देश में समाप्त हो जायेगी। सारी प्रान्तीय भाषाएँ दिशाहीन, अरक्षित एवं कंगाल होंगी तथा आचारसंहिता का भी लोप हो जायेगा। सत्ता की मदिरा

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**, UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 12, Iss 01, 2023

के नशे में धुत्त हमारे बुद्धिहीन राजनेताओं को राष्ट्र के भविष्य के नाम पर 'अगले चुनाव' के अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता।

इसी रूप से रचनाकारों को सावधान कर दिया है, परन्तु अदूरदर्शी शासन ने संस्कृत के लिए समर्पित जीवन जीने वाले कवि, लेखक, समीक्षक, प्राध्यापक एवं सहृदय पाठक आज समवेत भाव से उसके संरक्षण में लगे हैं।

२४ सितम्बर, १९८९ को मैंने एकरसानन्द संस्कृत महाविद्यालय, मैनपुरी के प्राङ्गण में सुरभारती सेवा संस्थान, मैनपुरी के आमन्त्रण पर आयोजित देववाणी-परिषद्, दिल्ली के एकादश तथा द्वादश संयुक्त अधिवेशन में यह तथ्य तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उपन्यस्त किया था कि जितने प्रतिभाशाली संस्कृतज्ञ वाणीपुत्र इस समय भारत में एक साथ अवतरित हैं, सम्भवतः उतने किसी भी शती में न रहे होंगे। संस्कृत के साहित्यकारों तथा विपश्चितों में इतना पारस्परिक स्नेह, सहयोग, सामञ्जस्य तथा सम्भावना का भाव भी शायद ही अतीत में कभी रहा होगा। इसी का परिणाम है कि शासकीय उपेक्षा के बावजूद संस्कृत रचनाधर्मिता न केवल राष्ट्र की अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक है, बल्कि आरोह की पराकाष्ठा पर है।

अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य के सन्दर्भ में न केवल राजनेताओं, अपितु रूढ़िवादी संस्कृतज्ञों की भी दृष्टि बदलनी चाहिए। प्रायः देखा गया है कि कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा से शून्य अकवि, अलेखक अथवा असाहित्यिक संस्कृत विद्वान् संस्कृत नवलेखन के घोर विरोधी हैं। वे दुहरा अपराध कर रहे हैं-एक तो लेखनशून्य होते हुए भी, विविध षड्यन्त्रों द्वारा गरिमामय पदों पर बैठकर उस संस्कृत संस्था तथा भाषा का भविष्य मटियामेट करना और दूसरे प्रतिभाप्रसूत नवलेखन का अवमूल्यन करना अथवा उसे प्रतिष्ठित न होने देना।

मञ्चों पर ये विद्वान् बड़ी-बड़ी बातें करते हैं; परन्तु परास्नातक संस्कृत पाठ्यक्रम में अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य को सम्मिलित करते समय उन्हें मस्तिष्क ज्वर हो जाता है-मानो संस्कृत के भविष्य की अगली सहस्राब्दी इन्हीं के हाथ में है। वस्तुतः जब तक संस्कृत का नया साहित्य छात्र-समुदाय के बीच परिशीलित नहीं होगा, तब तक 'संस्कृत-नवलेखन' का प्रत्यभिज्ञान नहीं हो सकेगा। फिलहाल, मेरी अपनी सोच यही है।

सन्दर्भ

१. पुष्पावकीर्णाः कर्तव्याः काव्येषु हि रसा बुधैः। नाट्य० ७।१२८ एवं रसाश्च भावाश्च त्र्यवस्था नाटके स्मृताः। नाट्य० ७।१३०

२. सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्। अग्राम्यशब्दमर्थ्यञ्च सालङ्कारं सदाश्रयम् ।। मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्। पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।। चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्। युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।।

Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**,

३. यह आलेख अभिराजयशोभूषण की रचना से पूर्व का है।